n hindi books, visit our website www.jaypeebrothers.com, for detailed information on hindi books, visit our website www.jaypeebrothers.com

आधुनिक शल्य चिकित्सा विज्ञान

Textbook of Modern Surgical Science



टी सी गोयल
अपुल गोयल

प्राक्कथन
संदीप कुमार

JAYPEE

विषय सूची (Contents)

अनुभाग 1: सामान्य शल्य चिकित्सा (General Surgery)

1. शल्य चिकित्सा का इतिहास (History of surgery) 3
2. आघात लगना (Trauma, Injuries) 12
3. दग्धाघात या जल जाना (Burns) 34
4. रक्तस्राव तथा रक्तस्थगन (Hemorrhage and hemostasis) 44
5. रक्त पर्याधान (Blood transfusion) 54
6. स्तब्धता (Shock) 61
7. जल, विद्युत अपघट्यों तथा अम्ल-क्षार का संतुलन और पोषण (Water, electrolytes and acid-base balance and nutrition) 68
8. व्रण रोग (Ulceration) 82
9. नाड़ीव्रण तथा नालव्रण (Sinus and fistula) 99
10. विगलन (Gangrene) 110
11. शल्यकीय संक्रमण (Surgical infections) 119
12. अर्बुद रोग (Tumors) 173
13. रसकोष्ठ या रसौलियां (Cysts) 218
14. अंगों का प्रत्यारोपण (Organ transplantation) 229
15. निश्चेतना प्रणाली (Anesthesia) 248
16. परिशल्यकर्म परिचर्या (Perioperative care) 267
17. बाह्य हर्निया (External hernia) 279
18. स्तन के रोग (Diseases of breast) 299
19. नाभि, उदर-भित्ति, उदरावरण तथा पश्चोदरम के रोग (Diseases of umbilicus, abdominal wall, peritoneum and retroperitoneum) 328

अनुभाग 2: रक्तवाहिनीय शल्य चिकित्सा (Vascular Surgery)

20. धमनियों के रोग (Diseases of arteries) 365
21. शिराओं के रोग (Diseases of veins) 395

अनुभाग 3: भोजन प्रणाली के रोग (Diseases of Alimentary System)

22. मुख गुहा के रोग (Diseases of oral cavity) 415
23. लार ग्रंथियों के रोग (Diseases of salivary glands) 459
24. ग्रसनी के रोग (Diseases of pharynx) 474
25. ग्रासवाहिनी के रोग (Diseases of esophagus) 485
26. आमाशय और पक्वाशय के रोग (Diseases of stomach and duodenum) 512
27. क्षुद्रांत्र के रोग (Diseases of small intestine) 547
28. वृहदांत्र के रोग (Diseases of colon) 570
29. आंत्रावरोध (Intestinal obstruction) 600
30. कृम्याकार उपांग के रोग (Diseases of vermiform appendix) 624
31. मलाशय के रोग (Diseases of rectum) 637
32. गुदा तथा गुदीय नाल के रोग (Diseases of anus and anal canal) 654

अनुभाग 4: यकृत-पित्त प्रणाली (Hepatobiliary Tract)

33. यकृत के रोग (Diseases of liver) 685
34. पित्ताशय तथा पित्त प्रणालों के रोग (Diseases of gall bladder and bile ducts) 715
35. अग्नाशय के रोग (Diseases of pancreas) 750

अनुभाग 5: अन्तःस्रावी ग्रंथियों के रोग (Diseases of Endocrine Glands)

36. गलग्रंथि के रोग (Diseases of thyroid) 777

अनुभाग 6: लसीका प्रणाली के रोग (Diseases of Lymphatic System)

37. लसीका ग्रंथियों के रोग (Diseases of lymph nodes) 811
38. लसीका वाहिनियों के रोग (Diseases of lymphatic vessels) 826

अनुभाग 7: मूत्र रोग शल्य चिकित्सा (Urology)

39. मूत्र संस्थान के रोगः लक्षण, चिह्न तथा विशेष परीक्षण (Diseases of urinary system: symptoms, signs and investigations) 839
40. वृक्कों के रोग (Diseases of kidneys) 870
41. मूत्रवाहिनियों या गवीनियों के रोग (Diseases of ureter) 902
42. मूत्राशय के रोग (Diseases of urinary bladder) 913
43. प्रस्थित तथा शुक्राशयों के रोग (Diseases of prostate and seminal vesicles) 937
44. मूत्रवाहक तथा शिश्न के रोग (Diseases of urethra and penis) 955
45. वृषण, उपवृषण तथा अण्डकोश के रोग (Diseases of testis, epididymis and scrotum) 982

- *ग्रंथ सूची (Bibliography)* *1004*
- *हिन्दी-इंग्लिश शब्दावली (Hindi-English Dictionary)* *1006*
- *निर्देशिनी (Index)* *1019*

3

दग्धाघात या जल जाना (Burns)

दग्धाघात (Burns)

जल जाना पूरे संसार की एक आम समस्या है। अकेले ब्रिटेन में इस समस्या के 1,75,000 रोगी प्रतिवर्ष अस्पतालों की आपातकालीन सेवा में चिकित्सा के लिए आते हैं जिनमें 1,30,000 भर्ती कर लिए जाते हैं। हमारे देश में यह समस्या विशुद्ध चिकित्सकीय न होकर सामाजिक भी है क्योंकि हमारे समाज में किसी को सताने, दण्ड देने या मारने का यह भी एक ढंग है (चित्र 3.1, 3.2 तथा 3.3)।



चित्र 3.1: पीठ और दाईं भुजा की दग्धाघात

कारण-ज्ञान (Etiology) – दग्धाघात के बहुत से कारण होते हैं ––

- **तापीय दग्धाघात (Thermal burns)**

(क) शुष्क अग्नि से जलना (Burns due to dry heat)
1. आग की लौ या लपटों से जलना (Flame burns)
2. गर्म धातु के स्पर्श से जलना
3. विकिरत ताप (Radiant heat) जैसे सूर्य की किरणों से जलना (Actinic burns)

(ख) आर्द्र ताप (Moist heat) से जलना या झुलसना (Scald)
1. गर्म दूध, चाशनी, चाय, काफी, दाल, सब्जी आदि से जलना (चित्र 3.4 तथा 3.5)
2. भाप (Steam) से झुलसना

(ग) गर्म हवा या गर्म गैसों से जलना जैसा कि बम के विस्फोट या गैस के सिलिंडर के फटने (Explosion) पर होता है।



चित्र 3.2: उथली दग्धाघात (Superficial burns)
(सिप्स के डॉ0 आर के मिश्रा के सौजन्य से)



चित्र 3.3: दोनों टांगों की उथली दग्धाघात (Superficial burns)
(सिप्स के डॉ0 आर के मिश्रा के सौजन्य से)

- **रासायनिक दग्धाघात (Chemical burns)**
  1. सांद्र अम्ल तथा क्षार (Strong acids and alkalies) तथा अन्य रसायनों से जल जाना
  2. नेपाम बम (Nepalm bomb) की आघात
- विद्युत धारा या आकाशीय विद्युत से जलना या विद्युतीय दग्धाघात (Electrical or lightning burns)

JAYPEE BROTHERS

- रेडिओधर्मी विकिरणों से जलना या विकिरणी दग्धाघात (Radiation burns)
- घर्षणी दग्धाघात (Friction burns)

इन सब में तापीय दग्धाघात (Thermal burns) सबसे अधिक होती हैं।

विकृति-ज्ञान (Pathology)

वैसे तो जल जाने पर शरीर का कोई भाग या अवयव अथवा पूरा शरीर ही जल कर राख हो सकता है, लेकिन प्रायः त्वचा ही सबसे पहले और सबसे अधिक प्रभावित होती है। दग्धाघात का मुख्य प्रभाव होता है त्वचा का स्कन्दी परिगलन (Coagulative necrosis)।

जलते ही प्रभावित त्वचा लाल हो जाती है और इसकी केशिकाएं (Capillaries) फैल जाती हैं। इनकी अन्तःकला (Endothelium) की क्षति हो जाती है जिससे इनकी प्रवेश्यता (Permeability) बढ़ जाती है। इससे जले हुए ऊतकों में प्ररस (Plasma) एकत्र होने लगता है जिससे जलशोथ (Edema) के कारण ये सूज जाते हैं। त्वचा में प्ररस के एकत्र होने से छाले या फफोले (Vesicles and bullae) पड़ जाते हैं (चित्र 3.4 तथा 3.5)। छाले या फफोलों के फटने या जली त्वचा के हटने पर घाव बन जाते हैं जिनसे शरीर में जीवाणु प्रवेश कर जाते हैं। जैक्सन (Jackson) ने जली त्वचा के तीन क्षेत्रों का वर्णन किया है –



चित्र 3.4: आर्द्र दग्धाघात के कारण (गर्म चाय से जला) हथेली में बड़ा फफोला



चित्र 3.5: हाथ की आर्द्र दग्धाघात में हाथ में फफोले बन गए है (सिप्स के डॉ0 आर के मिश्रा के सौजन्य से)

- **स्कंदन का क्षेत्र (Zone of coagulation)** – यहां सबसे अधिक जला ऊतक होता है जो आघात के केन्द्र में होता है। इसमें ऊतकों का स्कंदन हो गया होता है। कभी-कभी परिगलन (Necrosis) भी हो गई होती है। चिकित्सा में इसका निष्कासन करने की आवश्यकता होती है।
- **स्थगन का क्षेत्र (Zone of stasis)** – यह पहले क्षेत्र के बाहर होता है। इसमें वाहिनियों का संकुचन (Vasoconstriction) हो गया होता है जिससे रक्तन्यूनता (Ischemia) हो गई होती है। यदि रक्तन्यूनता बनी रहती है और साथ में संक्रमण हो जाता है तब जले का घाव गहरा होता जाता है। इसकी यदि समय रहते चिकित्सा हो जाए तब घाव का बढ़ना रुक जाता है।
- **अतिवाहिनीयता का क्षेत्र (Zone of hyperemia)** – यह दूसरे क्षेत्र के बाहर दग्धाघात की परिधि पर होता है। इसमें अतिवाहिनीयता होती है जिसके कारण यह क्षेत्र शीघ्र ही पूर्णतः स्वस्थ हो जाता है।

विकृत-कार्यिकी (Pathophysiology) – दग्धाघात के शरीर पर प्रभाव कई बातों पर निर्भर करते हैं (चित्र 3.6) –

1. जल जाने के क्षेत्रफल (Extent of burn) पर।
2. जलने की गहराई (Depth of burn) पर।
3. जलने के कारण (Cause of burn) पर।
4. रोगी की आयु पर – जीवन के दोनों सिरों – शैशवावस्था तथा वृद्धावस्था में जल जाने के खतरे अधिक होते हैं।
5. शरीर में साथ में अन्यत्र लगी चोट, तथा शारीरिक रोग जैसे हृदय रोग, जीर्ण फुफ्फुसीय रोग (Chronic pulmonary disease), मधुमेह आदि पर।

दग्धाघात में शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव निम्नलिखित हैं (चित्र 3.6) **–**

- **आयतनन्यूनता (Hypovolemia)** – बच्चों में त्वचा के 15% से अधिक तथा वयस्कों में 20 % से अधिक जलने पर रक्त का आयतन कम हो जाता है। इसके कई कारण होते हैं –
  1. जले हुए स्थान की केशिकाओं की प्रवेश्यता बढ़ जाने से रक्त से प्ररस या जल निकल कर स्थानीय ऊतकों में एकत्र हो जाता है (Internal fluid loss)।
  2. त्वचा की जली हुई सतह से प्ररस निकलने लगता है जो या तो बह जाता है या भाप बन कर उड़ जाता है।
- **स्तब्धता (Shock)** – दग्धाघात में कई प्रकार की स्तब्धता होती है जो नीचे लिखे क्रम में होती है –
  1. **तंत्रिकीय स्तब्धता (Neurogenic shock) –** यह तीव्र वेदना (Severe pain) के कारण होती है और जलने के बाद तुरन्त हो जाती है।
  2. **आयतनन्यूनतीय स्तब्धता (Hypovolemic shock) –** यह दग्धाघात के कुछ घंटों के बाद होती है जब आयतनन्यूनता हो जाती है और इसकी तुरन्त उचित चिकित्सा नहीं होती है।
  3. **पूयविषी स्तब्धता (Septic shock) –** दग्धाघात के घावों में जब संक्रमण पैठ जाता है तब पूयविषी स्तब्धता हो सकती है।
- **संक्रमण का होना** – त्वचा शरीर को संक्रमण से बचाती है। अतः त्वचा के जलने पर वातावरण के जीवाणु और शरीर के जीवाणु (Resident bacteria) जली हुई त्वचा के स्थानों से प्रवेश करके (जैसे) जले पर नमक छिड़कते हैं। संक्रमण होने पर ऊतकों के नष्ट होने का एक और कारण उपस्थित हो जाता है। जले घाव से जीवाणु-विष तथा स्वयं जीवाणु रक्त में प्रवेश करके रक्तविषता (Toxemia), जीवाणुरक्तता (Bacteremia) तथा पूयविषता (Septicemia) जैसी स्थितियां पैदा कर सकते हैं। दग्धाघात के घाव में जीवाणु बहुत शीघ्र डेरा डालते हैं और घाव की पूरी गहराई में द्रुतता से पैठते हैं (चित्र 3.7)।

घावों के संक्रमण के अलावा, संक्रमण अन्य स्थानों में भी हो सकता है जैसे फुफ्फुसों का (Pulmonary infection), मूत्र मार्ग का (Urinary tract infection) विशेषतः यदि मूत्राशय में कैथेटर डाल दिया गया हो, तथा अन्तःशिरा कैनुला या कैथेटर के स्थान (Intravenous cannula or catheter site) का। इन तीनों स्थानों के स्रावों के सूक्ष्मजैविक परीक्षण में प्रायः वे ही जीवाणु मिलते हैं जो दग्धाघात के घावों के परीक्षण में मिलते हैं। इन घावों के संक्रमण की प्रारम्भिक अवस्था में संक्रमण का प्रभाव स्थान सीमित (Limited locally) होता है। शरीर पर इसका कोई संस्थानिक (Systemic effect) नहीं होता है।

JAYPEE BROTHERS

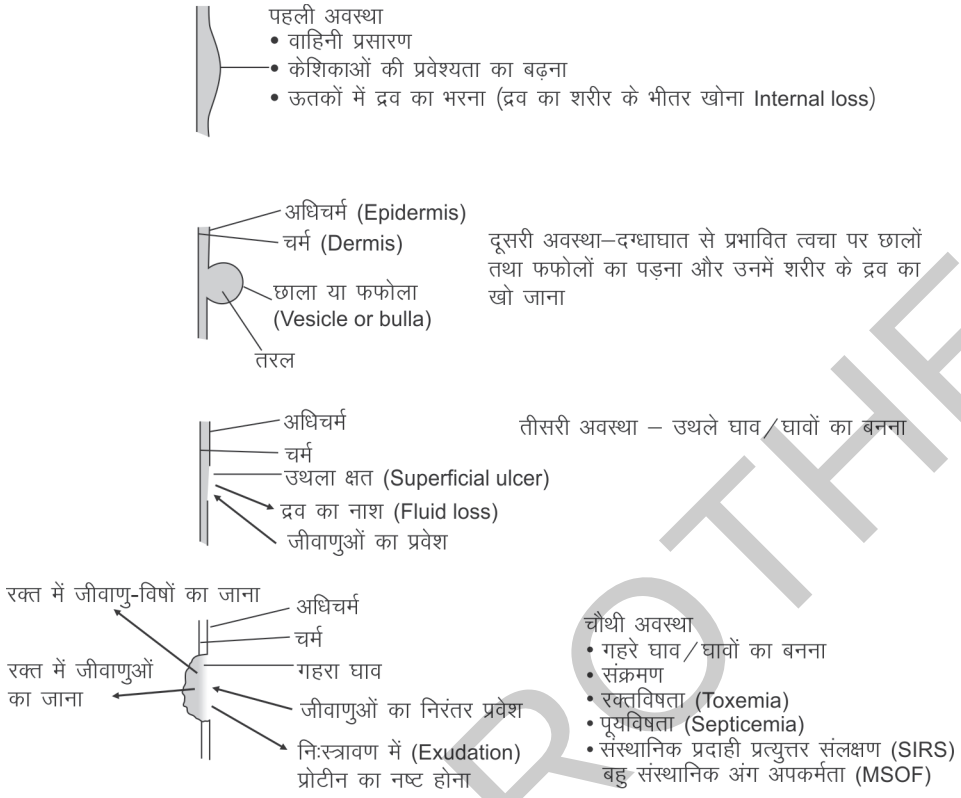

चित्र 3.6: दग्धाघात की विकृतकार्यिकी (Pathophysiology)



चित्र 3.7: संक्रमित दग्धाघात (Infected burns)
(सिप्स के डॉ0 आर के मिश्रा के सौजन्य से)

समस्या की चिकित्सा न होने या देर से होने पर, संक्रमण का पूरे शरीर पर प्रभाव पड़ने लगता है जिससे ज्वर आने लगता है, नाड़ी की दर बढ़ जाती है (Tachycardia) और जिह्वा पर मैल की पर्त चढ़ जाती है जिससे मुख से दुर्गंध (Halitosis) आने लगती है। इसको संस्थानिक प्रदाही प्रत्युत्तर संलक्षण (Systemic inflammatory response syndrome, SIRS) कहते हैं। समय के और व्यतीत होने पर संक्रमण के विषों तथा रक्तचाप की गड़बड़ी आदि से शरीर के लगभग सभी अन्तरांगों की कार्यप्रणाली गड़बड़ा जाती है (Multiple organ dysfunction syndrome, MODS) और अन्त में इनकी अपकर्मता (Multiple system organ failure, MSOF) हो जाती है। ऐसा होने पर रोगी के मरने में देर नहीं लगती है।

• **श्वसन क्रिया (Respiratory function)** – दग्धाघात में श्वसन क्रिया कई तरह से प्रभावित हो सकती है –

1. आनन तथा ग्रीवा (Face and neck) के जलने पर स्थानीय ऊतकों की अच्छी-खासी जलशोथ (Edema) हो जाती है। इससे नेत्र पटल (Eyelids) सूज कर भीतर को मुड़ जाते हैं (Inversion), ओष्ठ सूज कर बाहर को पलट जाते हैं, जिह्वा फूल जाती है और ग्रीवा सूज जाती है। जिह्वा तथा ग्रीवा की जलशोथ होने पर श्वास मार्ग अवरुद्ध हो सकता है।
2. दग्धाघात के होते समय सांस के साथ धुआं, गर्म हवा तथा गैसें, भाप, धुएं के कण (Smoke particles) तथा कार्बन मोनोक्साइड फुफ्फुसों में प्रवेश करते हैं। ये श्वास मार्ग (Airway), फुफ्फुसों तथा शरीर को कई तरह से हानि पहुंचा सकते हैं –

(*i*) गर्म गैसों तथा गर्म भाप से श्वास मार्ग जल जाता है, इसकी अधिकला (Respiratory epithelium) नष्ट हो जाती है और श्वसनी की जलशोथ (Edema) हो जाती है।

(*ii*) धुएं के कणों से फुफ्फुसों के वायुकोशों (Alveoli) की रासायनिक प्रदाह (Chemical alveolitis) हो जाती है। इससे श्वसन अपकर्मता (Respiratory failure) हो सकती है।

(*iii*) बन्द कमरे में आग लगने पर कार्बन मोनोक्साइड (CO) का भी उत्पादन होता है जो श्वास के साथ फुफ्फुसों में चली जाती है। इसकी हीमोग्लोबिन से बंधता (Affinity) ऑक्सीजन से 240 गुना अधिक होती है। इससे रक्त में ऑक्सीजन का जाना (Transport) अवरुद्ध (Block) हो जाता है। रक्त की कारबॉक्सीहीमोग्लोबिन (Carboxyhemoglobin) का आमापन किया जा सकता है। यदि यह रक्त में 10% से अधिक है तब जीवन के लिए खतरा उपस्थित हो जाता है। ऐसे रोगी की खालिस (Pure) ऑक्सीजन से 24 घंटे चिकित्सा की जाती है। यदि कारबॉक्सीहीमोग्लोबिन रक्त में 60% हो जाए तब मृत्यु हो जाती है।

JAYPEE BROTHERS

बन्द कमरे में आग लगने पर हाइड्रोजन साइनाइड (Hydrogen cyanide) का भी उत्पादन हो जाता है जिससे सूत्रकणिकीय श्वसन (Mitochondrial respiration) में बाधा पड़ जाती है।

3. वक्ष की त्वचा की पूरी गहराई की परिधीय दग्धाघात (Circumferential burn) में कड़ा और मोटा संरक्षी प्रलेप या एस्कार (Eschar) वक्ष को चारों ओर से घेर लेता है जिससे वक्ष-भित्ति का प्रश्वास (Inspiration) में फैलना कम या सीमित हो जाता है (Mechanical block of inspiratory expansion)। अतः रोगी पूरी सांस भीतर नहीं ले पाता है। ऐसा अग्रभुजा में भी हो सकता है।

- **अन्य प्रभाव (Other effects)**

1. रक्त – प्ररस के निकल जाने से रक्त अधिक गाढ़ा हो जाता है (Hemoconcentration), हीमेटोक्रिट बढ़ जाती है, रक्त में प्रोटीन कम हो जाती है और विद्युत अपघट्यों का संतुलन गड़बड़ा जाता है जिसमें पोटेसियम बढ़ जाता है।

2. आंत्र संस्थान – दग्धाघात के कारण हुई प्रदाही उत्तेजना तथा स्तब्धता से आंत्र की श्लेष्म कला के सूक्ष्म रक्त संचार को हानि पहुंच सकती है (Microvascular damage) जिससे इसकी रक्तपूर्ति में बाधा पड़ती है। इससे आंत्र की चलता (Motility) तथा भोजन का अवशोषण कम हो जाते हैं। साथ में आंत्र से जीवाणुओं का पारगमन (Translocation) होने लगता है जिससे भी जले के घाव संक्रमित हो जाते हैं। इन सब परिवर्तनों से पेट फूल जाता है जिससे सांस लेने में बाधा पड़ने लगती है।

3. पोषण (Nutrition) – 20% से अधिक जले रोगी में पोषण की समस्या होती है जिसके कई कारण होते हैं – शरीर से ताप का नाश (Heat loss), प्ररस के बहने से प्रोटीन का नष्ट होना, चयापचय का बढ़ जाना (Hypermetabolism) तथा संक्रमण के कारण हो रही पोषण की हानि। एक औसत वयस्क में ऊर्जा के इन सब अपव्ययों को जोड़ने पर यह लगभग 5000–6000 किलो कैलोरी प्रतिदिन बैठती है। इसके अतिरिक्त रोगी अरुचि, मतली और वमन के कारण ठीक से खाता-पीता भी नहीं है।

जैवरासायनिक परिवर्तन तथा मध्यस्थक (Biochemical changes and mediators)

दग्धाघात के स्थान पर पदार्थ पी, सीरोटोनिन, प्रोस्टाग्लांडिन E2 तथा F2 एल्फा, हिस्टेमीन, प्लेटलेट एक्टीवेटिंग घटक, नाइट्रिक ऑक्साइड, ब्रैडीकाइनिन तथा ल्यूकोट्रीन बी4 तथा डी4 (Substance P, serotonin, prostaglandin E2 and F2 alpha, histamine, platelet activating factor, nitric oxide, bradykinin and leukotrienes B4 and D4) से स्थानीय केशिकाएं (Capillaries) फैल जाती हैं और इनकी प्रवेश्यता (Permeability) बढ़ जाती है। फिर इससे पूरे शरीर पर प्रभाव पड़ने लगता है क्योंकि इन केशिकाओं से स्थानीय उत्पन्न हुए विष शरीर में जाने लगते हैं, जीवाणु भी जा सकते हैं।

दग्धाघात की गहनता के अनुसार पूरे शरीर में प्रदाही मध्यस्थक (Inflammatory mediators) निकलने लगते हैं और वृहद्भक्षियों (Macrophages) का कार्य गड़बड़ा जाता है। इन्टरल्यूकीन-2, 4 तथा 6 तथा इन्टरफेरोन-गामा (IFN-γ) का स्तर भी दग्धाघात की गहनता के अनुसार बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त पहले 24 घंटों में ट्यूमर नीक्रोसिस फैक्टर (TNF) तथा इन्टरफेरोन-गामा का उत्पादन होने से यकृत के कोशाओं में नाइट्रिक ऑक्साइड सिंथेटेस (Synthetase) का उत्पादन बढ़ जाता है। दग्धाघात में तीन बातें होती हैं –

1. जल जाने से शरीर के रक्षात्मक आवरण (त्वचा) में छिद्र हो गया या हो गए होते हैं।
2. इनसे तरल, विद्युतीय अपघट्यों तथा प्रोटीन का रिसाव हो रहा होता है जिससे शरीर को नुकसान पहुंच रहा होता है।
3. इनसे वातावरण से तरह-तरह के जीवाणु प्रवेश करके स्थानीय संक्रमण कर देते हैं जो पूरे शरीर को प्रभावित कर सकते हैं।

अतः चिकित्सा करते समय इन्हीं तीनों बातों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है।

दग्धाघात का उन्मुक्तिज्ञान (Immunology)

जल जाने के उपरान्त शरीर में उन्मुक्ति (Immunity) की कुछ असामान्यताएं हो जाती हैं। इनका सम्बन्ध कदाचित् जले हुए घाव में संक्रमण होने की संभावना से होता है। सीरम में आईजीए (IgA), आईजीएम (IgM) तथा आईजीजी (IgG) के स्तर गिर जाते हैं जो बी-कोशाओं (B-cells) के नष्ट होने के द्योतक होते हैं।

कोशा-मध्यस्थी उन्मुक्ति (Cell-mediated immunity) अथवा टी-कोशाओं (T-cells) के कार्य का भी अवशमन हो जाता है। अतः इन रोगियों में लगाए गए समरोपण (Homografts) तथा विषमरोपण (Xenografts) सामान्य से अधिक दिन ठहरते हैं। ऐसा इन्टरल्यूकीन-2 (Interleukin-2) के उत्पादन के कम हो जाने के कारण भी हो सकता है। रक्त में एक उन्मुक्तिशामक घटक (Immuno-suppressive factor) भी उत्पन्न हो जाता है जिसका अणुभार 5000 होता है।

अधिक जले रोगियों में अवशामक टी-कोशा (Suppressor T-cells) की गतिविधि बढ़ जाती है जिसकी गहनता पर संक्रमण का होना और मृत्यु का होना काफी निर्भर करते हैं।

कुछ अनुसंधानकर्ताओं द्वारा ऐसा भी विश्वास किया जाता है कि जले के घाव से एक अवशामक घटक (Inhibitory factor) निकलता है जो बहुरूप श्वेतकोशाओं (Polymorphs, PMNs) के रासायनिक अनुचलन (Chemotaxis) का अवशमन (Suppression) करता है। बहुरूप कोशा ऑक्सीजन कम लेने लगते हैं और इनकी जीवाणुनाशक क्षमता कम हो जाती है।

दग्धाघात का आमापन (Measurement of severity of burn)

- **जली हुई सतह का आकलन** – जली हुई त्वचा के क्षेत्रफल (Surface area) के मापन के लिए ''नौ का नियम'' (Rule of nines) का उपयोग किया जाता है (चित्र 3.8)। इसमें पूरे शरीर के क्षेत्रफल को 100 मानते हुए विभिन्न भागों का क्षेत्रफल इस प्रकार मापा जाता है (तालिका देखिए) –

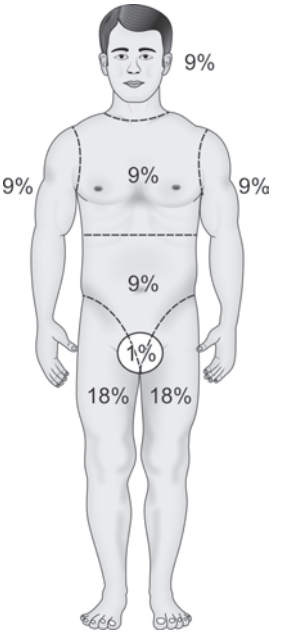

चित्र 3.8: नौ का नियम (Rule of nines)

बच्चों में इस नियम को थोड़ा बदलना पड़ता है क्योंकि सिर तथा ग्रीवा का क्षेत्रफल शरीर के कुल क्षेत्रफल का 20 प्रतिशत होता है। हथेली (Palm) से भी मापन का कार्य किया जा सकता है। यह 1% होती है।

प्रायः जलने के तुरन्त बाद क्षेत्रफल के मापन में थोड़ी बहुत परेशानी होती है क्योंकि जली त्वचा पर गन्दगी, जले हुए कपड़े आदि चिपके होते हैं। अतः कुछ समय (48–72 घंटे) बाद एक बार फिर से मापने का कार्य करना चाहिए। रोगी का पूरा शरीर उघाड़ देना चाहिए (Exposure) जिससे जले हुए क्षेत्र का ठीक से आकलन किया जा सके। रोगी को ठंड न लगे इस बात का ख्याल रखना चाहिए।

JAYPEE BROTHERS

जला हुआ भाग या अवयव		पूरे शरीर की त्वचा के कुल क्षेत्र का प्रतिशत
सिर तथा ग्रीवा (Head and neck)	–	9%
वक्ष (Thorax) का आगे का क्षेत्र	–	9%
वक्ष का पीछे का क्षेत्र	–	9%
दाईं ऊपर की प्रशाख (Upper extremity)	–	9%
बाईं ऊपर की प्रशाख	–	9%
उदर (Abdomen) का आगे का क्षेत्र	–	9%
उदर का पीछे का क्षेत्र	–	9%
दाईं नीचे की प्रशाख की आगे की सतह	–	9%
दाईं नीचे की प्रशाख की पीछे की सतह	–	9%
बाईं नीचे की प्रशाख की आगे की सतह	–	9%
बाईं नीचे की प्रशाख की पीछे की सतह	–	9%
बाह्य जननांग (External genitalia)	–	1%

• **दग्धाघात की गहराई का आकलन (Depth of burn)**

1. उपरिस्थ या पहले क्रम की दग्धाघात (Superficial or first degree burn) – इसमें केवल अधिचर्म (Epidermis) प्रभावित होती है या झुलस गई होती है। इसका मुख्य लक्षण दर्द या जलन का होना है। त्वचा लाल हो गई होती है (Erythematous) तथा हल्की सी सूजी (Edematous) होती है। यह आघात 48–72 घंटों में स्वतः ठीक हो जाती है। 5–10 दिन के अन्दर अधिचर्म के क्षतिग्रस्त कोशाओं के शल्क (Scales) झड़ जाते हैं। इसमें न कोई क्षत बनता है और न दाग बनता है। कुछ दिन के लिए त्वचा का रंग बदल गया होता है। इस प्रकार की दग्धाघात के दो आम उदाहरण हैं धूप में त्वचा का झुलस जाना या भाप से जल जाना।

2. आंशिक मोटाई की या दूसरे क्रम की दग्धाघात (Partial thickness or second degree burn) – इसमें अधिचर्म तो पूरी जल गई होती है, चर्म (Dermis) का भी कुछ अंश प्रभावित हो गया होता है। इसमें दर्द बहुत होता है, छाले-फफोले बन गए होते हैं और त्वचा से प्ररस का रिसाव होता है। इसके दग्धव्रण प्रायः 10–14 दिन में ठीक हो जाते हैं। इनके क्षतचिह्न (Scars) हल्के (Minimal) बनते हैं, घाव का द्वितीयक संक्रमण हो जाए तो बात दूसरी है (चित्र 3.9)।



चित्र 3.9: दोनों जांघों तथा उदर की उथली दग्धाघात (Superficial burns)
(सिप्स के डॉ0 आर के मिश्रा के सौजन्य से)

3. पूरी मोटाई की या तीसरे क्रम की दग्धाघात (Full thickness or third degree burn) – इसमें अधिचर्म और पूरी चर्म (Dermis) जल गई होती हैं जिससे जली हुई त्वचा शुष्क, कड़ी तथा चमड़े-जैसी हो जाती है। दबाने से इसके रंग में कोई अन्तर नहीं पड़ता है। इस जली त्वचा को एस्कार (Eschar) कहते हैं। यह आम के पापड़ या सरेस की पपड़ी जैसी दिखाई देती है (चित्र 3.10)।

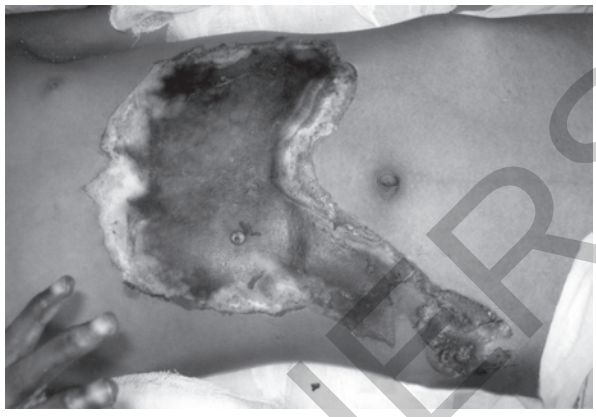

चित्र 3.10: उदर का गहरी दग्धाघात जिसमें त्वचा का एस्कार बन गया है। आघात के पुराना होने से पृथकन रेखा (Line of demarcation) बन गई है
(सिप्स के डॉ0 आर के मिश्रा के सौजन्य से)

4. चौथे क्रम की दग्धाघात (Fourth degree burn) – इसमें त्वचा के साथ के नीचे के आकार जैसे उपत्वचीय वसा, कण्डराएं, तंत्रिकाएं, पेशियां आदि भी जल गए होते हैं (तालिका देखिए) –

विवरण	आंशिक दग्धव्रण (क्रम 1 तथा 2)	पूर्ण दग्धव्रण (क्रम 3 तथा 4)
देखने पर	त्वचा लाल तथा गीली दिखाई देती है, छाले और फफोले हो सकते हैं	त्वचा सूखी, तथा सरेस की पपड़ी-जैसी दिखाई पड़ती है
स्पर्श करने पर	अतिसंवेदनशील होती है मृदु और लचकीली होती है	सुन्न मालूम पड़ती है कठोर, चमड़े की तरह
दबाने पर	सफेद पड़ जाती है (Blanching) और दबाव हटाने पर फिर लाल हो जाती है	रंग में कोई परिवर्तन नहीं होता है

दग्धाघात की गहराई के आकलन के लिए चिकित्सकीय परीक्षण के अलावा सूचि (Needle) से वेधन करके जली त्वचा की मोटाई का अनुमान लगाया जाता है। अन्य विधियां जिनसे आकलन किया जा सकता है ये हैं – पूरी मोटाई की बायोप्सी लेना (Full thickness biopsy), लेसर डापलर (Laser Doppler), तथा पराध्वनि (Noncontact ultrasound)। इनमें से कोई भी विधि बहुत भरोसे की नहीं है। अतः ये लोकप्रिय नहीं है।

बॉक्स फल (Baux score)

रोगी की आयु और जलने के क्षेत्रफल (TBSA) के प्रतिशत का योग बॉक्स फल कहलाता है। यह दग्धाघात से मरने की संभावना को दर्शाता है। जैसे यदि 40 वर्ष की आयु का मनुष्य अगर 40% जल गया है तब मरने की संभावना (40+40) 80% होती है।

लक्षण-ज्ञान (Clinical features)

- जलते ही दग्धाघात के स्थान पर जोर की जलन होती है और बहुत दर्द होता है।
- ज्यादा जल जाने पर दर्द के अलावा और भी लक्षण होते हैं। रोगी डरा-सहमा होता है, और उसको प्यास अधिक लगती है। कभी-कभी वमन भी होती है, और ठंड लगती है। मूत्र की मात्रा कम हो जाती है (Oliguria)। नाड़ी की दर अधिक हो जाती है और रक्तचाप कम हो सकता है।
- लपटों, धुएं तथा वाष्प से श्वास मार्ग के जलने के लक्षणों-चिह्नों के लिए देख लेना चाहिए। यदि नाक के बाल जल गए हैं, नाक तथा तालु की श्लेष्म कला

JAYPEE BROTHERS

जल गई है नाक तथा मुखग्रसनी (Oropharynx) में काजल (Soot) भरा है तथा मुख द्वार के पास की या ग्रीवा की त्वचा जल गई है तो श्वास मार्ग भी प्रायः साथ में जल गया होता है (Inhalational injury)।

विशेष परीक्षण – ये दग्धाघात के कारण हुई क्षति के आकलन के लिए जैसी आवश्यकता हो किए जाते हैं।

- रक्त में हीमोग्लोबिन, हीमेटोक्रिट, गैसों का मापन (Blood gas analysis) तथा पीएच (pH) किए जा सकते हैं। यदि पूयविषता की संभावना है तब जीवाणु संवर्धन किया जाता है।
- मूत्र का परीक्षण एल्ब्युमिन तथा समाकृतियों (Casts) के लिए किया जाता है। यदि संक्रमण की संभावना है तब जीवाणु संवर्धन किया जाता है।
- घावों के स्राव का जीवाणु संवर्धन – यह बार-बार करना पड़ सकता है।
- वक्ष का क्ष-आलेखन – यदि श्वास मार्ग जल गया है, सांस फूल रही है या सांस लेने में कष्ट हो रहा है, तब वक्ष का क्ष-आलेखन करना चाहिए। फुफ्फुसों में ठोसीकरण के धब्बे (Patches of consolidation) हो सकते हैं।

दग्धाघात के उपद्रव (Complications)

- **तुरन्त**

1. स्तब्धता (Shock)
2. श्वास मार्ग का अवरुद्ध होना
3. संक्रमण – घाव का संक्रमण, पूयविषता (Septicemia) तथा टेटनस
4. वृक्कीय अपकर्मता (Renal failure) – इसके दो कारण होते हैं – आयतनन्यूनता तथा जले हुए लाल कोशा (RBCs) तथा जली हुई पेशियों से निकली मायोग्लोबिन से वृक्कीय वाहिकाओं (Renal tubules) का अवरुद्ध होना।
5. रक्ताल्पता (Anemia) – इसके होने के तीन कारण होते हैं – लाल कोशाओं का जल जाना, अस्थिमज्जा का अवशमन (Bone marrow depression) तथा पोषण की कमी (Nutritional deficiency)।
6. दाब व्रण (Stress ulcer)

- **विलम्बित**

1. अवकुंचन (Contractures) (चित्र 3.11)
2. कीलक (Keloids)
3. त्वचा का विरंजकीकरण (Depigmentation) (चित्र 3.14 तथा 3.15)
4. खुजली (Pruritus)
5. मारजोलिन का घाव (Marjolin's ulcer)



चित्र 3.11: दग्धाघात के कारण बना ग्रीवा का अवकुंचन (Post-burn contracture) (डॉ0 सुरजीत भट्टाचार्य के सौजन्य से)

चिकित्सा

1. प्राथमिक चिकित्सा (First aid, prehospital care)

- जलते हुए रोगी को रुको, गिरो और लुढ़को (Stop, drop and roll) का पालन करते हुए कपड़ों में लगी आग को बुझाने का प्रयत्न करना चाहिए।
- दग्धाघात पर ठंडा पानी कम से कम 10 मिनट तक डालते रहना चाहिए। इससे दर्द और जलन कम हो जाते हैं। इसका प्रभाव लगभग 1 घंटा तक रहता है। इससे घाव में हो रही सूक्ष्मवाहिनियों की क्षति (Microvascular damage) कम हो जाती है। यह आंशिक मोटाई की दग्धाघात में लाभकारी होता है।
- सांस में कोई अवरोध नहीं होनी चाहिए। यदि श्वास मार्ग जल गया है तब रोगी को बैठा कर रखना चाहिए।
- यदि प्रशाख जल गई हैं तो इनको ऊंचा करके रखने में इनकी जलशोथ कम होती है।



चित्र 3.12: आनन की उथली दग्धाघात (Superficial burn of face) को कोलाजन की शीट से ढक दिया गया है (डॉ0 सुरजीत भट्टाचार्य के सौजन्य से)



चित्र 3.13: पीठ की उथली दग्धाघात को कोलाजन की शीट से ढक दिया गया है (डॉ0 सुरजीत भट्टाचार्य के सौजन्य से)

JAYPEE BROTHERS



चित्र 3.14: दग्धाघात (Burn injury) के कारण हुए अवकुंचन तथा त्वचा का विरंजकीकरण (Depigmentation) (डॉ0 सुरजीत भट्टाचार्य के सौजन्य से)



चित्र 3.15: दग्धाघात के कारण हुए अवकुंचन (Contractures) तथा क्षतचिह्न का विरंजकीकरण (Depigmentation) (डॉ0 सुरजीत भट्टाचार्य के सौजन्य से)

2. अस्पताल में आने के बाद चिकित्सा

- उथली और छोटी दग्धाघात में लाक्षणिक चिकित्सा दी जाती है और घाव पर 1% सिल्वर सल्फाडायजीन लगाई जाती है। इन रोगियों को अस्पताल में भर्ती करने के आवश्यकता नहीं होती है।
- गहरी दग्धाघात में या अधिक जल जाने पर चिकित्सा के लिए अस्पताल में भर्ती करने की आवश्यकता होती है। भर्ती करने के इंगेत निम्नलिखित हैं –

(*i*) यदि वायु मार्ग जल गया हो या जलने की संभावना है।
(*ii*) यदि रोगी को अन्तःशिरा तरल देने की आवश्यकता है।
(*iii*) यदि शल्यक्रिया की आवश्यकता है।
(*iv*) यदि रोगी का अनन (Face), हाथ, मूलाधार (Perineum) या पैर जल गए हैं।
(*v*) बच्चों और वृद्धों के जल जाने पर।
(*vi*) विद्युतीय दग्धाघात होने पर।
(*vii*) सांद्र हाइड्रोफ्लोरिक एसिड से जलने पर।

जैसी आवश्यकता होती है आघातों की चिकित्सा की एबीसीडीईएफ (ABCDEF) बातों के अनुसार दग्धाघात की चिकित्सा की जाती है –

1. **ए** में यह सुनिश्चित कर लिया जाता है कि **वायुमार्ग (Airway)** खुला है और आगे भी खुला रहेगा। अतः यदि वायुमार्ग के अवरोध के कोई चिह्न है जैसे आवाज का बैठना, सांस लेने में आवाज का होना (Stridor), या अवरोध होने की संभावना हो तो अन्तःश्वसनीय ट्यूब (Endotracheal tube) डाल देनी चाहिए। स्वरयंत्र की जलशोथ होने में 4–24 घंटे लगते हैं। यह अधिक अच्छा होगा कि जलशोथ होने से पहले ही ट्यूब डाल दी जाए। जलशोथ होने के बाद यदि ट्यूब डालना संभव न हो तो क्रीकोथाइराइड का कर्तन (Cricothyroidotomy) करके अवरोध का निराकरण कर दिया जाता है। यदि श्वास मार्ग के जलने का कोई चिह्न है तो श्वास मार्ग में ट्यूब डालने में देरी नहीं करनी चाहिए।
2. **बी** में रोगी का ठीक से **सांस ले पाना (Breathing)** सुनिश्चित किया जाता है।
3. **सी (Circulation, C) –** रक्त संचार को बनाए रखने के लिए स्तब्धता (Shock) की रोकथाम करनी चाहिए और यदि है तब इसकी चिकित्सा की जाती है। इसका मुख्य कारण आयतनन्यूनता होती है। अतः रोगी को अन्तःशिरा तरल (Intravenous fluids) दिए जाते हैं। स्तब्धता का उपचार करते समय निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति होनी चाहिए।
   - प्रकुंची चाप (Systolic pressure) 120 मिलीमीटर पारद (Hg) या उसके आस-पास होना चाहिए।
   - केन्द्रीय शिराचाप (CVP) 5–10 सेन्टीमीटर जल होना चाहिए।
   - मूत्र का उत्सर्जन (Urine output) 50–100 मिलीलीटर प्रति घंटा होना चाहिए।

   प्रशाख के पूरी गहराई की परिधीय दग्धाघात (Full thickness circumferential burn) में प्रशाख की रक्तन्यूनता (Ischemia) हो जाती है। अतः जले के एस्कार में लम्बे चीरे लगा कर दबाव हटा देना चाहिए।
4. **डी (Disability, D) –** रोगी की तंत्रिकीय दशा (Neurological status) पर भी निगाह रखी जाती है। कार्बन मोनोक्साइड तथा हाइड्रोजन साइनाइड की विषता (Poisoning) होने पर तंत्रिकीय लक्षण होते हैं।
5. **ई (Exposure, E) –** रोगी का पूरा शरीर उघाड़ कर देखना चाहिए कि कोई आघात बिना चिकित्सा के न रह जाए। साथ ही इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि ठंड न लगे (Hypothermia)। रोगी को स्वच्छ वातावरण में रखा जाता है।
6. **एफ (Fluid resuscitation, F) –** बच्चों में यदि 10% से अधिक और वयस्कों में 15% से अधिक त्वचा जल गई है तब अन्तःशिरा तरल देने की आवश्यकता होती है। यदि मतली और वमन नहीं हैं तब रोगी को मुख से तरल दिए जाते हैं। इनमें नमक अवश्य दिया जाता है।
7. **अन्य बातें**
   - **पीड़ा** के नियंत्रण के लिए मारफीन या पेन्टाजोसीन (Pentazocine) अन्तःशिरा जैसी आवश्यकता हो दिए जाते हैं। इनको प्रायः बार-बार देने की आवश्यकता होती है। ये अन्तःमांस (IM) या उपत्वचीय (SC) नहीं दी जाती है क्योंकि यहां इनका अवशोषण ठीक प्रकार से नहीं होता है।
   - **टेटनस की रोकथाम –** यदि रोगी पहले से प्रतिरक्षित (Immunized) है तब टेटनस टॉक्साइड की एक बूस्टर मात्रा लगा दी जाती है। यदि रोगी पहले से प्रतिरक्षित नहीं है तब मानवीय इम्यूनग्लोब्युलिन (TIG) दी जाती है।
   - रक्त **पर्याधान (Blood transfusion)** जहां तक हो सके नहीं करना चाहिए।
   - **दाब व्रण (Stress ulceration) की रोकथाम –** अधिक जल जाने पर दाब व्रण होने की काफी संभावना होती है। इनकी रोकथाम के लिए एच2-रोधक जैसी रेनिटीडीन या प्रोटोन पम्प अवशामक (PPI) जैसे पेन्टाप्राजोल दिए जाते हैं। इनके बावजूद भी रक्तस्राव हो सकता है।
   - **कार्बन मोनोक्सॉइड की विषता** के लिए रोगी को विशुद्ध ऑक्सीजन (Pure oxygen) दी जाती है। कुछ चिकित्सक हाइपरबारिक ऑक्सीजन में रखने की भी राय देते हैं लेकिन इससे वास्तव में कोई लाभ होता है इस पर सन्देह बना हुआ है। हाइड्रोजन साइनाइड की विषता में हाइड्रोक्सोकोबालामीन (Hydroxocobalamin) तथा 100% ऑक्सीजन दिए जाते हैं।

JAYPEE BROTHERS

- **निरंतर प्रबोधन करना (Continuous monitoring) –** यदि रोगी की दशा गम्भीर है तब निम्नलिखित बातों का निरंतर प्रबोधन किया जाता है – नाड़ी की दर, केन्द्रीय शिराचाप (CVP), रक्त की ऑक्सीजन का स्तर तथा मूत्र का उत्सर्जन (Urine output)। यदि आयतनन्यूनता के ठीक किए जाने के बावजूद भी मूत्र का उत्सर्जन 50 मिलीलीटर प्रति घंटा से कम रहता है तब 40 मिलीग्राम फ्रूसीमाइड (Frusemide) अन्तःशिरा दी जाती है अथवा 20% मैनीटॉल 200 मिलीलीटर एक मात्रा में (Bolus dose) दिया जाता है।
- **स्थानीय चिकित्सा –** प्रथम तथा द्वितीय क्रम की दग्धाघात में स्थानीय पट्टी (चित्र 3.12 तथा 3.13) से चिकित्सा की जाती है जबकि तृतीय और चतुर्थ क्रम की दग्धाघात में मृत त्वचा तथा ऊतकों का निष्कासन करके त्वचा रोपण (Skin grafting) करते हैं।

दग्धाघात में तरल देना (Fluid resuscitation in burns)

दग्धाघात के बाद त्वचा के जल जाने के कारण जली हुई त्वचा से तरल, विद्युत अपघट्यों तथा प्रोटीन का नाश होने लगता है। आयतनन्यूनता के कारण स्तब्धता हो सकती है जिससे अन्तरांगों का तरीकरण (Perfusion) प्रभावित हो जाता है विशेषतः मस्तिष्क का, वृक्कों का, तथा जली हुई त्वचा का।

यदि उल्टी नहीं हो रही है तब रोगी मुख से तरल ले सकता है। पहले 24 घंटों में मूत्र का उत्सर्जन कम होता है क्योंकि वृक्कों का अवशमन हो गया होता है। अतः विशुद्ध जल देने से सोडियमन्यूनता तथा जलविषता (Hyponatremia and water intoxication) हो सकते हैं जिनसे जीवन को खतरा उत्पन्न हो सकता है। अतः नमकीन पानी दिया जाता है जैसे शिकंजी में नमक डाल कर। अन्तःशिरा तरल देने के इंगेत ये हैं – यदि बच्चों में 10% से अधिक त्वचा तथा वयस्कों में 15% से अधिक त्वचा जल गई है तब अन्तःशिरा तरल दिए जाते हैं।

- **तरल का चयन** – प्रायः तीन प्रकार के तरल उपयोग में लाए जाते हैं – क्रिस्टेलॉइड्स, हाइपरटोनिक सेलाइन तथा कोलॉइड्स।
  1. **क्रिस्टेलॉइड्स (Crystalloids) –** अधिकतर रिंगर का लैक्टेट या हार्टमेन का घोल (Ringer's lactate or Hartmann's solution) उपयोग में लाए जाते हैं। इनमें पहला अधिक लोकप्रिय है। ये सस्ते होते हैं। अतः पहले 24 घंटे में ये ही दिए जाते हैं। इस काल में केशिकाएं फैली हुई होती हैं। अतः अन्तःशिरा आधान किए गए तरल का ऊतकों में रिसाव होता रहता है। इस समय यदि प्रोटीन दी जाती है तो उसके अणु भी रिस कर निकल जाते हैं।
  2. **हाइपरटोनिक सेलाइन (Hypertonic saline) –** कुछ चिकित्सा केन्द्रों में यह तरल दिया जाता है। इससे रक्त की परासरणी (Osmolality) के बढ़ने से ऊतकों की जलशोथ (Edema) कम हो जाती है।
  3. **कोलॉइड्स (Colloids) –** इसमें मानव एल्ब्युमिन का घोल (Human albumin solution) तथा ताजा जमाया हुआ प्ररस (Fresh frozen plasma, FFP) आते हैं। ये अधिकतर 12 घंटे के बाद दिए जाते हैं। इनके देने से जलशोथ (Edema) कम हो जाती है।
- **तरल की मात्रा** – यह दग्धाघात के क्षेत्रफल के अनुसार दी जाती है। पहले 24–36 घंटे में अधिकतम तरल के आधान की आवश्यकता होती है। उसके उपरान्त रोगी की दशा थोड़ी सी स्थिर हो जाती है क्योंकि जितनी जलशोथ होनी होती है हो चुकी होती है। अतः तब केवल नित्य की आवश्यकता, रिसाव तथा उड़ाव (Evaporation) से होने वाली तरल की हानि की पूर्ति की आवश्यकता होती है। तीसरे-चौथे दिन जब जलशोथ कम होना प्रारम्भ हो जाती है तब ऊतकों की जलशोथ का जल रक्त में वापस आने लगता है (Infusion of fluid back into circulation from tissue spaces)। ऐसा होने पर अन्तःशिरा आधान में कम तरल देना चाहिए अन्यथा तरल के अधिक हो जाने से (Fluid overload) हृदय जवाब दे सकता है विशेषतः वृद्ध रोगियों में।

  क्रिस्टेलाइड्स देने के लिए पार्कलेण्ड का सूत्र (Parkland formula) प्रायः काम में लाया जाता है। इसमें रिंगर का लैक्टेट दिया जाता है। इसमें पहले 24 घंटे में एक प्रतिशत दग्धाघात में 4 मिलीलीटर तरल प्रति किलोग्राम (4mL/Kg per one percent TBSA burn) दिया जाता है। इसमें आधा तरल पहले 8 घंटे में और आधा बाद के 16 घंटों में दिया जाता है।

  कोलॉइड्स देने के लिए ईवान्स का सूत्र (Evans formula) काम में लाया जाता है। इसमें एक प्रतिशत दग्धाघात के लिए 1 मिलीलीटर ताजा जमाया हुआ प्ररस (FFP) प्रति किलोग्राम (1 mL/Kg% TBSA burn) दिया जाता है। इसके साथ एक प्रतिशत दग्धाघात के लिए 1 मिलीलीटर 0.9% सेलाइन प्रति किलोग्राम तथा 2000 मिलीलीटर 5% डैक्सट्रोस दिया जाता है।

  अन्तःशिरा तरल देने के लिए परिधि के शिरा में मोटा कैथेटर (Large bore IV catheter) डाल दिया जाता है। 40% से अधिक की दग्धाघात में 2 अन्तःशिरा कैथेटर डालने चाहिए। अगर न जले भाग में शिरा न मिले तब जली त्वचा में होकर भी कैथेटर डाला जा सकता है। जहां तक हो सके पैरों की शिराओं का उपयोग नहीं करना चाहिए।

पोषण (Nutrition)

दग्धाघात के रोगियों में पोषण देने की सामान्य से अधिक आवश्यकता होती है क्योंकि जलने से चयापचय की दर (Metabolic rate) 200 प्रतिशत तक बढ़ जाती है। अतः 20% से अधिक की दग्धाघात में भोजन देना शुरू कर दिया जाता है। आमाशय-आंत्रीय चलता मेटोक्लोप्रामाइड (Metoclopramide) से बढ़ाई जा सकती है। यदि मुख से पोषण नहीं दिया जा सकता है तब नाक से ट्यूब डाल कर मध्यांत्र में पहुंचा दी जाती है और उससे पोषण दिया जाता है (Nasojejunal feeding)। जले हुए रोगियों में कैलोरी की आवश्यकता का पता लगाना कठिन होता है। इसमें क्यूरेरी का सूत्र (Curreri formula) सहायक होता है जो इस प्रकार है –

25 किलो कैलोरी प्रतिदिन + 40 किलो कैलोरी प्रति 1% दग्धाघात (%TBSA) प्रतिदिन पोषण उचित मात्रा में देना चाहिए। अधिक देने से यह शरीर में अनावश्यक वसा के रूप में जमा हो जाता है।

स्थानीय चिकित्सा

- **मरहम-पट्टी** – आंशिक दग्धाघात की तो अधिकतर मरहम-पट्टी से ही स्थानीय चिकित्सा की जाती है। पूर्ण दग्धाघात में जब तक रोगी शल्यक्रिया के लिए फिट नहीं हो जाता मरहम-पट्टी से ही चिकित्सा की जाती है।
  1. सिल्वर सल्फाडाइजीन (Silver sulfadiazine) क्रीम 1% – दग्धाघात पर लगाने की यह सबसे अधिक लोकप्रिय क्रीम है जो कई प्रकार के जीवाणुओं को घाव में बस जाने से रोकती है विशेषतः स्यूडोमोनास एरुजिनोसा को तथा मेथीसिलिन-रोधी स्टेफिलोकॉकस ऑरियस को। यह सस्ती है और घाव में लगती नहीं है। यह घाव से कोई खास अवशोषित नहीं होती है। अतः इसका शरीर पर कोई खास दुष्प्रभाव नहीं पड़ता है। यह त्वचा के रोपणों को नष्ट कर देती है। अतः जिन घावों में त्वचा के रोपण लगाए गए हैं उनके पास भी नहीं लगाना चाहिए।
  2. मेफेनाइड एसीटेट (Mafenide acetate) – यह भी बहुत प्रभावी है। इसकी क्रीम या घोल उपयोग में लाया जाता है। यह एस्कार की उपस्थिति में भी काम में लाई जा सकती है। इसको आंशिक मोटाई के दग्धाघात के घावों पर लगाने से दर्द होता है। इसका घावों से शरीर में अवशोषण होता है जिससे चयापचयी अम्लता (Metabolic acidosis) हो जाती है।
  3. सिल्वर नाइट्रेट का 0.5% घोल भी बहुत से जीवाणुओं को नष्ट कर देता है। इसके उपयोग के ये दुष्प्रभाव होते हैं – सोडियमन्यूनता, कपड़ों पर काले दागों का पड़ना और कभी-कभी मेथीग्लोबिनरक्तता (Methemoglobinemia) का होना।

     कई अन्य मरहम काम में लाए जा रहे हैं जैसे म्यूपीरोसिन (Mupirocin)।
  4. अब बहुत सी लगाने वाली पट्टियां भी उपलब्ध हैं जैसे सिल्वर से पगी पट्टी (Silver impregnated dressing) तथा जैविक झिल्लियां (Biologic membranes) (चित्र 3.12 तथा 3.13)।
- **एस्कार का भाजन (Escharotomy)** – वक्ष के, प्रशाखों के, उदर के तथा उंगलियों की पूरी गहराई और पूरी परिधि की दग्धाघात में जली हुई कड़ी हो

JAYPEE BROTHERS

गई त्वचा के दबाव से बन्धक (Tourniquet) के लगाए जाने जैसा प्रभाव होता है। ऐसा होने पर एस्कार के दबाव को शीघ्रातिशीघ्र हटा देना चाहिए।

1. वक्ष की ऐसी दग्धाघात में रोगी सांस नहीं ले पाता है (Hypoventilation)। इन रोगियों में जलने के प्रायः 8 घंटे बाद एस्कार का भाजन किया जाता है। जल्दी करने के दाग बहुत खराब बनते हैं। यह रोगी के बिस्तर पर ही कर दिया जाता है और इस कार्य के लिए अच्छा हो जो विद्युत कॉटरी का उपयोग किया जाए।

   वक्ष के एस्कार भाजन में दोनों तरफ की अग्र कक्षीय रेखाओं (Anterior axillary lines) में चीरे लगाए जाते हैं। ऊपर की तरफ ये जत्रुकों के नीचे बढ़ा दिए जाते हैं और नीचे की ओर पसलियों के किनारे के नीचे आगे को बढ़ा दिए जाते हैं (Bilateral subclavicular and subcostal extensions)।
2. प्रशाख के पूरी गहराई की परिधीय दग्धाघात में एस्कार के दबाव से पहले शिरा रक्त की वापसी रुक जाती है और फिर धमनीय पूर्ति कम होने लगती है। अतः कक्ष संलक्षण (Compartment syndrome) हो जाता है। इस समस्या में प्रशाख के दोनों पार्श्वों में लम्बे चीरे लगाए जाते हैं। ऊपर की प्रशाख में ये अंगूठे की तथा कनिष्ठा की ठेक (Thenar and hypothenar eminences) तक में ले जाए जा सकते हैं। उंगलियों की परिधीय दग्धाघात में एस्कार के भाजन से कोई लाभ नहीं होता है। अतः यह कार्य नहीं किया जाता है। पिधानक को भी प्रायः काटना पड़ता है।
3. उदर की परिधीय दग्धाघात में मूत्र का आयतन कम हो जाता है, वेन्टीलेटर में वायुमार्ग का चाप अधिक हो गया होता है तथा चापन्यूनता हो जाती है। उदर के कक्ष संलक्षण के निराकरण के लिए उदर के दोनों पार्श्वों में चीरे लगा दिए जाते हैं।

- **जले ऊतकों का निष्कासन** – गहन दग्धाघात में रोगी की सामान्य दशा के ठीक होते ही जल कर नष्ट हुई त्वचा तथा अन्य ऊतकों का निष्कासन कर देना चाहिए। बड़ी दग्धाघातों में निष्कासन का कार्य किश्तों में किया जाता है। दग्ध हुए ऊतकों को वाटसन या गौलिन ब्लेड (Watson or Goulin blade) से स्लाइस की तरह काटा जाता है (Tangential slices) जब तक कि पूरा जला हुआ ऊतक न निकल जाए। रक्तस्राव को कम करने के लिए एपीनेफ्रीन (Epinephrine) का उपयोग किया जाता है। प्रशाखों में बंधक (Tourniquet) बांध कर यह कार्य किया जा सकता है।

  अब एक फाइब्रिनोजन तथा थ्रोम्बिन का सीलेन्ट आ गया है जिसकी घाव पर फव्वार छोड़ी जाती है (Spray sealant)। इससे रक्तस्राव रुक जाता है और त्वचा के रोपण भी घाव पर चिपक जाते हैं।

  रक्तस्राव कम करने के लिए पिधानक तक निष्कासन किया जा सकता है लेकिन इसका दाग खराब बनता है।

  आनन के, नेत्रपटलों तथा हाथों के जले ऊतक के निष्कासन के लिए अब एक जल विच्छेदक (Water dissector) भी उपलब्ध है। इससे कार्य करने में देर लगती है।

- **घाव को आवृत्त करना (Wound coverage)** – दग्धाघात के घाव को ढकने के लिए बहुत सी विधियां काम में लाई जाती हैं –

  1. **आंशिक मोटाई के स्वयंरोपण (Split thickness sheet autografts) –** ये रोगी की स्वयं की न जली त्वचा से पॉवर डरमेटोम की सहायता से निकाले जाते हैं। ये सबसे अच्छे होते हैं और अच्छे दिखाई देते हैं। ये प्रायः जंघाओं से लिए जाते हैं। बच्चों में ये नितम्ब (Buttocks) से लिए जा सकते हैं।
  2. **जालीदार स्वयंरोपण (Meshed autografts) –** रोपण को जालीदार करने से इसका आकार बढ़ जाता है। अतः यह बड़े क्षेत्रों को आवृत्त कर सकता है (चित्र 3.16)। इसके लगाने से घाव का निःस्राव तथा रक्त का सरलता से विस्रावण (Drainage) हो जाता है। अतः रोपण के जम जाने की संभावना बढ़ जाती है लेकिन इससे चितकबरा दाग बनता है। अतः ये रोपण चेहरे पर, ग्रीवा में तथा हाथों पर नहीं लगाए जाते हैं।
  3. **शव से लिए गए समरोपण (Human cadaveric allografts) –** ज्यादा जले रोगियों में स्वयं की त्वचा रोपण के लिए उपलब्ध न होने पर शवों से ली गई

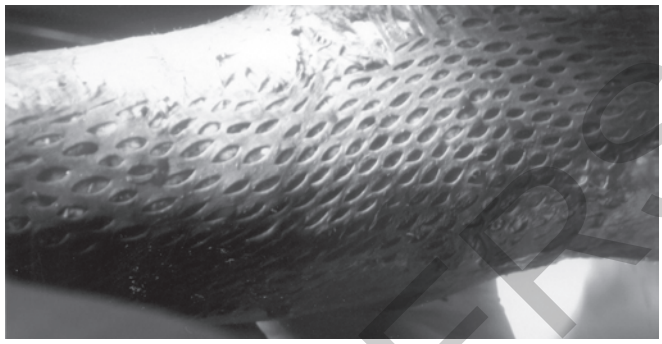

चित्र 3.16: जालीदार त्वचा का रोपण (Meshed graft)
(सिप्स के डॉ0 आर के मिश्रा के सौजन्य से)

  त्वचा के रोपण लगाए जाते हैं। इससे घाव कुछ समय के लिए तो ठीक हो जाते हैं, लेकिन बाद में उन्मुक्ति क्रिया के द्वारा अस्वीकार (Reject) कर दिए जाते हैं। तब तक रोगी के शरीर में त्वचा के दाता स्थान (Donor sites) ठीक हो गए होते हैं कि इनसे रोपण लेकर क्रियाशील हुए घावों पर लगाए जा सकते हैं।
  4. **त्वचा के संश्लेषित विकल्प (Synthetic skin substitutes) –** घाव को अस्थाई रूप से ढकने के लिए अब कुछ संश्लेषित विकल्प भी उपलब्ध हैं जैसे कोलाजन की शीट (Collagen sheet, Integra), मानव की चर्म (Dermis) की शीट (Alloderme, cryopreserved acellular human dermis)।
  5. **अधिकला के संवर्धित स्वयंरोपण (Cultured epithelial autografts)** भी उपयोग में लाए गए हैं, लेकिन इनका संवर्धन करने में काफी समय लगता है और लगाना कठिन होता है। अतः अभी ये लोकप्रिय नहीं हैं।

- **दाता स्थानों की पट्टी के लिए बहुत सी पट्टियां उपलब्ध हैं जैसे** – साधारण पारदर्शी फिल्म्स (Simple transparent films), हाइड्रोकोलाइड्स (Hydrocolloids), पेट्रोलियम गॉज तथा सिल्वर-पगी पट्टी (Silver-impregnated dressing)।

दग्धाघात की विलम्बित समस्याएं (Late problems)

दग्धाघात की चिकित्सा करते समय इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि घाव शीघ्रातिशीघ्र ठीक हो जाएं। घावों के ठीक होने में जितनी अधिक देर लगती है इनकी उतनी ही अधिक तन्तुमयता (Fibrosis) होती है और उतना ही अधिक दाग या क्षतचिह्न (Scar) बनता है। दग्धाघात की विलम्बित समस्याएं क्षतचिह्न से ही सम्बन्ध रखती हैं –

1. **अवकुंचनों (Contractures) का बनना** – गहरी दग्धाघात का यह सबसे आम उपद्रव है (चित्र 3.14,15,17 तथा 3.18)। समय के व्यतीत होने पर क्षतचिह्न का फाइब्रस ऊतक सिकुड़ जाता है जिससे अवकुंचन बनते हैं। यदि क्षतचिह्न किसी संधि को पार करते हुए होते हैं तब अवकुंचन विशेष रूप से बनते हैं। दग्धाघात के घाव का यदि जल्दी त्वचारोपण कर दिया जाता है तब अवकुंचनों के बनने की संभावना कम हो जाती है।
2. **क्षतचिह्न की अतिवृद्धि (Hypertrophy)** – कभी-कभी क्षतचिह्न में ऊतकों की अतिवृद्धि हो जाती है जिससे क्षतचिह्न मोटा पड़ जाता है और सतह से ऊपर उठ जाता है। इसको अतिवर्धित क्षतचिह्न (Hypertrophic scar) कहते हैं। इसका स्पर्श कठोर होता है। कुछ समय उपरान्त यह बढ़ना बन्द कर देता है (चित्र 3.18)। यदि क्षतचिह्न ऊपर को भी बढ़ता जाए और पार्श्वों में स्वस्थ ऊतकों में बढ़ने लगे तब यह कीलक (Keloid) का रूप ले लेता है। इसमें खुजली होती है।
3. **विरंजकीकरण (Depigmentation)** – कभी-कभी दाग का रंग जगह-जगह सफेद हो जाता है (चित्र 3.14 तथा 15)।

   इन सब उपद्रवों – क्षतचिह्नों का अवकुंचन, अतिवृद्धि तथा विरंजकीकरण के परिणामस्वरूप शरीर विकृत और कुरूप हो जाता है तथा प्रभावित भाग का कार्य भी गड़बड़ा जाता है। इन समस्याओं को होने से रोकना चाहिए।

JAYPEE BROTHERS



चित्र 3.17: जलने के बाद आनन का अवकुंचन (Contracture of face)
(डॉ0 सुरजीत भट्टाचार्य के सौजन्य से)



चित्र 3.18: दग्धाघात के क्षतचिह्न का अतिवर्धन (Hypertrophic burn scar)
(डॉ0 सुरजीत भट्टाचार्य के सौजन्य से)

4. **खाज (Pruritus)** – कभी-कभी दग्धव्रण के दाग में खुजली हो जाती है जो हर समय रहती है। कभी-कभी दागों को अधिक खुजाने से इनमें घाव हो जाते हैं। इस समस्या का समाधान सरल नहीं है। लेनोलिन या 0.5% हाइड्रोकोर्टीसोन क्रीम लगाने से लाभ हो सकता है। ट्राइमेपेराजीन (Trimeperazine tartrate, vallergan) दी जा सकती है।
5. **स्वेदनन्यूनता (Lack of sweating)** – गहरी दग्धाघात में स्वेद ग्रंथियां नष्ट हो जाती हैं। अतः दग्धाघात के क्षतचिह्नों पर स्वेदन नहीं होता है। यदि काफी त्वचा जल गई है तब शरीर की उष्णता का नियमन (Thermoregulation) गड़बड़ा जाता है। अतः इन रोगियों में गर्मियों में स्वस्थ त्वचा से स्वेदन अधिक होता है।
6. **मारजोलिन का घाव (Marjolin's ulcer)** – कभी-कभी अतिजीर्ण दग्धव्रण (Old burn wound) में क्रूर उत्परिवर्तन (Malignant transformation) हो जाता है जिससे एक साधारण घाव कैंसर में परिवर्तित हो जाता है। इसको मारजोलिन का घाव कहते हैं। सूक्ष्म परीक्षण में यह शल्की कोशा कारसीनोमा (SCC) होता है। इसका विस्तृत निष्कासन करके त्वचा रोपण (Wide excision and skin grafting) कर देते हैं।

अन्य प्रकार के दग्धव्रण

- **गीले ताप से जलना (Scald)**

इस प्रकार की दग्धाघात बच्चों में अधिक होती है और खौलते हुए दूध, पानी, चाय या चाशनी से जलने पर होती है। भाप से जलने पर भी इस प्रकार की दग्धाघात हो जाती है। इसमें त्वचा अधिकतर आंशिक रूप से जल जाती है और फफोले पड़ जाते हैं।

चिकित्सा – सुई से अवचूषण करके फफोलों की सीरम निकाली जा सकती है उसके बाद जली त्वचा पर सिल्वर सल्फाडाइजीन लगा कर पट्टी कर देते हैं। कुछ दिन में जली हई त्वचा ठीक हो जाती है और फफोलों की त्वचा स्वतः हटने लगती है या हटा दी जाती है।

- **विद्युतीय दग्धाघात (Electrical burns)**

4% दग्धाघात विद्युतीय दग्धाघात होती हैं। विद्युत के सम्पर्क में आने से विद्युत धारा जिन ऊतकों में से होकर गुजरती है उनका स्कंदन हो जाता है और वे धीरे-धीरे मृत होते जाते हैं। साथ में वाहिनियों का स्कंदन हो सकता है। इस आघात में त्वचा के नीचे के ऊतक अधिक प्रभावित होते हैं। अतः बाहर से देखने पर क्षति का अनुमान लगाना कठिन होता है। जलने के अलावा ये समस्याएं और हो सकती हैं – हार्दिक अतालताएं (Cardiac arrhythmias), कक्ष संलक्षण (Compartment syndromes) तथा पेशी-विलयन (Rhabdomyolysis)। अतः इन रोगियों में हृद्विद्युतालेखन करना चाहिए और कक्ष संलक्षण के लक्षणों-चिह्नों पर निगाह रखनी चाहिए।

विद्युत का स्विच बन्द करके रोगी को विद्युत के सम्पर्क से अलग करके तुरन्त भर्ती कर लेना चाहिए। हार्दिक असामान्यता यदि है तो उसकी चिकित्सा की जाती है। कक्ष संलक्षण के लिए पिधानक का विभाजन (Fasciotomy) करके कक्ष का विचापन कर देते हैं। फिर जैसे-जैसे मृत ऊतकों का पता चलता जाता है, निष्कासन करते जाते हैं।

- **रासायनिक दग्धाघात (Chemical burns)**

ये अपेक्षाकृत कम होती हैं लेकिन गहन (Severe) होती हैं। इनकी चिकित्सा की मुख्य बात होती है हानिकारक रसायन को घाव से कम से कम आधा घंटा पानी से धोते रह कर पूरी तरह हटा देना। हां, फीनोल (Phenol) से जलने पर पानी से न धोकर पॉलीइथाइलीन ग्लाइकॉल (Polyethylene glycol) से धोना चाहिए क्योंकि पानी से धोने पर फीनोल का घाव से अवशोषण बढ़ जाता है।

इस दग्धाघात की खास बात यह है कि जलाने वाला रसायन अवशोषित होकर पूरे शरीर को प्रभावित कर सकता है जैसे फॉर्मिक एसिड (Formic acid) से रक्त का संलायन (Hemolysis) हो सकता है और मूत्र में हीमोग्लोबिन आ सकती है (Hemoglobinuria)। हाइड्रोफ्लोरिक एसिड (Hydrofluoric acid) से रक्त में कैल्सियम की कमी (Hypocalcemia) हो सकती है। अतः इसमें रोगी को कैल्सियम दिया जाता है और घावों पर कैल्सियम ग्लूकोनेट लगाया जाता है।

- **विकिरण से जलना (Radiation burn)**

विकिरणी दग्धाघात दो प्रकार की होती है – स्थान सीमित (Localized) तथा सम्पूर्ण शरीर (Whole body) की।

किसी एक स्थान पर विकिरण के लगने पर वहां लालिमा (Erythema) हो जाती है और स्थानीय त्वचा जल जाती है। इसकी लाक्षणिक तथा रक्षात्मक (Supportive) चिकित्सा की जाती है। यदि त्वचा के नष्ट हो जाने से घाव हो जाता है तब इसका निष्कासन करके वाहिनीकृत रोपण (Vascularized graft) लगा दिया जाता है।

पूरे शरीर का विकिरण (Whole body irradiation) दो प्रकार का होता है। मारक विकिरण (Lethal radiation) तथा अमारक विकिरण (Nonlethal radiation)।

मारक विकिरण में त्वचा का तीव्र विशल्कन (Acute desquamation) होता है और रोगी धीरे-धीरे कष्टकारक मृत्यु को प्राप्त होता है।

अमारक विकिरण में मुख्यतः आंत्र की श्लेष्म कला के क्षतिग्रस्त होने और उन्मुक्ति के अवशमन (Immune suppression) के लक्षण होते हैं। इस समस्या की लाक्षणिक तथा सहायता (Supportive) चिकित्सा की जाती है। इससे आयोडीन की गोलियां दी जाती हैं।

JAYPEE BROTHERS

for detailed information on hindi books, visit our website www.jaypeebrothers.com, for detailed information on hindi books, visit our website w

आधुनिक शल्य चिकित्सा विज्ञान

Textbook of Modern Surgical Science

के जी एम यू आधुनिक शल्य चिकित्सा विज्ञान, शल्य चिकित्सा विज्ञान पर हिन्दी में लिखी गई पहली पाठ्य पुस्तक (Textbook) है जिसमें शरीर के लगभग सभी शल्यकीय रोगों (Surgical diseases) का विस्तार से वर्णन किया गया है। रोगों की परिभाषा (Definition), कारण (Etiology), विकृति-ज्ञान (Pathology), लक्षण-चिह्न (Symptoms and signs), विशेष परीक्षण (Investigations), उपद्रव (Complications) तथा चिकित्सा (Treatment) – सभी बातों का वर्णन किया गया है। वर्णन में अब तक की लगभग सभी नई जानकारियों का समावेश करने का प्रयत्न किया गया है। शरीर के सभी संस्थानों के शल्यकीय रोगों का वर्णन इस पुस्तक में है। जहां जैसी आवश्यकता हुई रोग के चित्र तथा रेखाचित्र (Line diagrams), नैदानिक परीक्षणों (Diagnostic investigations) के चित्र, प्रवाह चित्र (Flow chart) तथा तालिकाएं दी गई हैं जिससे विषय को समझने में सुविधा हो तथा सरलता हो।

भाषा सरल हिन्दी रखी गई है। जहां तक उपलब्ध हो पाए हैं रोगों के नाम हिन्दी में दिए गए हैं लेकिन साथ में कोष्ठक में अंग्रेजी का नाम भी लिख दिया गया है जिससे विद्यार्थियों को विषय को समझने और याद रखने में कोई कठिनाई न हो।

यह पुस्तक एम बी बी एस के सभी विद्यार्थियों की शल्य चिकित्सा विज्ञान की सम्पूर्ण आवश्यकता की पूर्ति करती है। यह एम एस (जनरल सर्जरी) के विद्यार्थियों को भी लाभान्वित करेगी।

अंग्रेजी में तो आधुनिक शल्य चिकित्सा विज्ञान की अनेक अच्छी-अच्छी पुस्तकें उपलब्ध हैं, लेकिन आजकल ऐसे विद्यार्थियों की संख्या अच्छी-खासी है जो इन पुस्तकों को पढ़ नहीं पाते हैं/समझ नहीं पाते हैं। अतः यह पुस्तक इन विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है।



टी सी गोयल ने एम बी बी एस 1962 में लखनऊ से पास किया तथा विभिन्न परीक्षाओं में सर्वप्रथम रहे, और 14 स्वर्ण, 2 रजत तथा 1 कांस्य पदक प्राप्त किए। पाठ्यक्रम के दस में से आठ विषयों में जिनमें सभी क्लीनिकल विषय सम्मिलित हैं, विशेष योग्यता (Honors) प्राप्त की। एम एस (सर्जरी) 1965 में पास किया और पुनः सर्वप्रथम रहे। अतः एक स्वर्ण मुद्रिका एवं चांसलर (महामहिम राज्यपाल) का पदक पुरस्कार स्वरूप प्राप्त हुए।

अप्रैल 1966 में किंग जॉर्ज मेडिकल कालेज में सर्जरी में लेक्चरर के पद पर नियुक्त हुए, 1974 में रीडर हुए और 1986 में प्रोफेसर नियुक्त हुए, तथा 30 जून 1999 को सेवानिवृत्त हुए। सन् 1977 में यू पी चेप्टर ऑफ एसोसिएशन ऑफ सर्जन्स ऑफ इण्डिया में जो पेपर पढ़ा था उस पर प्रथम पुरस्कार मिला। सन् 1982 में दो सप्ताह के लिए गोथेनबर्ग, स्वीडन, गए और वहां पर दुर्घटनाओं (Accidents) पर एक प्रशिक्षण कार्यक्रम में भाग लिया। सन् 1991 में यू पी चेप्टर ऑफ एसोसिएशन ऑफ सर्जन्स ऑफ इण्डिया में Carcinoma of Penis पर डॉ एस पी श्रीवास्तव व्याख्यान (Oration) दिया, जिस पर डॉ एस पी श्रीवास्तव पदक तथा पुरस्कार मिले। दिसम्बर 1996 को दनकौर रेजीडेन्ट्स वेलफेयर एसोसिएशन के वार्षिक समारोह में "दनकौर रत्न" से अलंकृत किया गया। जनवरी 1999 को भारत के प्रधानमंत्री माननीय श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी द्वारा के जी मेडिकल कॉलेज के वार्षिकोत्सव में "Best Teacher Award" से सम्मानित किया गया।

लिखने का शौक बहुत पुराना है। अब तक 60 शोध पत्र तथा 28 वैज्ञानिक लेख छप चुके हैं। विभिन्न कॉन्फ्रेन्सों में 26 पेपर पढ़ चुके हैं। बहुत.सी पुस्तकें (20) लिखी हैं, इस कारण से 17 अप्रैल 1999 को शल्य चिकित्सा विभाग द्वारा आयोजित एक समारोह में "Hamilton Bailey (सर्जरी की पुस्तकों के एक विश्वविख्यात ब्रिटिश लेखक) of India" के उपनाम से विभूषित किया गया।



अपुल गोयल ने किंग जॉर्ज मेडिकल कॉलेज, लखनऊ, से 1989 में एम बी बी एस पास किया जिसमें तीन विषयों में ऑनर्स (Honors) मिला तथा दो स्वर्ण पदक प्राप्त हुए। इसी कॉलेज से 1994 में सर्जरी में एम एस पास किया और फिर ऑल इण्डिया इन्स्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज से 2000 में यूरोलॉजी में एम सी एच पास किया और वहीं पूल ऑफिसर हो गए। इसी समय 2001 में डी एन बी (DNB) किया। इसके बाद किंग जॉर्ज मेडिकल विश्वविद्यालय, लखनऊ, में यूरोलॉजी में सहायक प्रोफेसर नियुक्त हुए और अब प्रोफेसर हैं।

पढ़ने, लिखन-लिखाने और रिसर्च का शौक है। अब तक 100 से अधिक रिसर्च पेपर विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय जरनलों में छप चुके हैं। तीन पुस्तकों के लिए 8 अध्याय लिख चुके हैं। चार पुस्तकों में वरिष्ठ लेखक के साथ सह-लेखक (Co-author) रहे हैं। यूरोलॉजिकल सोसाइटी ऑफ इण्डिया (USI) तथा इण्डियन मेडिकल एसोसिएशन (IMA) द्वारा फैलोशिप के अनेक एवार्ड्स मिल चुके हैं। बहुत सी राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय कॉन्फ्रेन्सों में पेपर पढ़ चुके हैं, तथा बहुत बार विदेश जा चुके हैं।

रिसर्च के क्षेत्र में पी एच डी (PhD) तथा एम सी एच (MCh) के गाइड हैं। इनकी पसन्द के अनुसंधान के क्षेत्र ये हैं – मूत्रवाहक की निकोचन (Stricture of urethra), वृक्कों की अश्मरी (Renal calculus disease) तथा पायसमूत्रता (Chyluria)।

Available at all medical bookstores
or buy online at www.jaypeebrothers.com



JAYPEE BROTHERS
Medical Publishers (P) Ltd.
www.jaypeebrothers.com

Join us on facebook.com/JaypeeMedicalPublishers

Shelving
Recommendation
SURGERY

ISBN 978-93-5152-542-4

